मीडिया और लोकतन्त्र

सम्पादक
प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र

वाणी प्रकाशन

वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002
शाखा
अशोक राजपथ, पटना 800 004
फ़ोनः +91 11 23273167 फ़ैक्सः +91 11 23275710
www.vaniprakashan.in
vaniprakashan@gmail.com
MEDIA AUR LOKTANTRA
Edited by Prof. Ravindranath Mishra
ISBN : 978-93-5072-412-5
Media/Criticism
© 2013 सम्पादक व लेखकगण
प्रथम संस्करण
मूल्य : ₹ 250
इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।
न्यू कृष्णा ऑफ़सेट, दिल्ली-110093 में मुद्रित
वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

धारावाहिक : प्रश्नों के घेरे में

वृषाली मान्द्रेकर

धारावाहिक या सीरियल एक ऐसी विधा है, जो लगातार जारी रहती है। धारावाहिक का निर्माण करने हेतु एक कथा का होना आवश्यक होता है, फिर भी आजकल, नृत्य, गायन, कॉमेडी आदि पर भी धारावाहिक बन रहे हैं। ये धारावाहिक मुख्यतः 'लाइव शो' से जुड़े रहते हैं—जैसे 'सारेगामा', 'बुगी बुगी', 'इंडियन आयडल', 'कॉमेडी सर्कस' आदि। ऐसा भी कहा जा सकता है कि धारावाहिक की असली जान उसकी कथा और प्रस्तुति के लिए तैयार की गयी पटकथा में रहती है। एक अच्छी कथा के अभाव में कोई सफल निर्देशक भी एक घटिया सीरियल ही बना सकता है।

कथा के साथ-साथ धारावाहिक में नाटकीयता भी रहती है, जिसके आधार पर वह जनरुचि के अनुकूल फार्मूले में दूरदर्शन पर पेश होती है। सुधीश पचौरी के शब्दों में "यह तो निर्विवाद है कि एक बार सीरियल रूप में प्रस्तुत होकर 'कहानी' या 'उपन्यास' एक मुश्त करोड़ों के बीच संचारित होता है और यदि दूरदर्शन की 'फीडबैक' 'दर्शकों की प्रतिक्रियाओं' को देखें तो पता चलता है कि शहरी मध्यवर्ग बिलानागा अधिकांश सीरियलों को देखता है।"[1]

इस आधार पर हम यह तय कर सकते हैं कि कथा साहित्य का सीरियल से अटूट सम्बन्ध है और कभी-कभी भीष्म साहनी, मनोहर श्याम जोशी, प्रेमचन्द जैसे महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों की कृतियों को धारावाहिक निर्मित हो जाने के बाद ही ख्याति प्राप्त हुई है। कुछ मामलों में ऐसा भी हो सकता है कि धारावाहिक कथा कृति पर आधारित न होकर खासतौर पर दूरदर्शन के लिए लिखे गये सीरियल लेखन पर आधारित होता है।

धारावाहिकों का वांछित एवं आवांछित प्रभाव समाज पर पड़ता है। इन धारावाहिकों में ज्यादातर 'लाइव शो' की ऐसी दुनिया बसी हुई है जिन्होंने बहुत से कलाकारों को जन्म दिया है। जहाँ इस क्षेत्र से आगे बढ़ने के लिए कलाकारों को परिवेश एवं बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं, वहाँ कतिपय कलाकार आसानी से उन्नति करते हैं। उनको थोड़ी बहुत परेशानियाँ भी झेलनी पड़ती हैं,

लेकिन मुझे लगता है कि सच्चे कलाकारों को अपनी कलाकारी को पेश करने के लिए ऐसे द्वार खुले हुए हैं, जिनसे गुजरते ही वे रातोंरात लोकप्रिय बन जाते हैं। आज इस तरह के धारावाहिक भी बन रहे हैं, जिनमें हमारी संस्कृति, मूल्यों को हम खो रहे हैं जिनके कारणस्वरूप पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं का आधार लेकर बननेवाले धारावाहिक भी बुनियादी तत्त्वों की मूल्यवत्ता को दर्शाने के बजाय इनके माध्यम से खोखले एवं अवांछित प्रभाव समाज पर डाल रहे हैं। 'अनेक साहित्यिक कृतियों, पुराण कथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं आदि को केन्द्र में रखकर भी दूरदर्शन पर कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। यदि यह प्रयास सुनियोजित ढंग से किया जाय तो दूरदर्शन हमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत को बड़े प्रभावी ढंग से आम आदमी तक पहुँचा सकता है, किन्तु व्यावसायिक वृत्ति और व्यवधान के कारण इसमें खतरे भी कम नहीं हैं। अवांछित रोचकता के मोह में प्रामाणिक तथ्यों को विकृत करके प्रस्तुत किया जाता है। इन प्रदर्शनों से पारम्परिक लोक विश्वास को ठेस पहुँचती है और भ्रान्त धारणाओं की सृष्टि होती है।' इतना ही नहीं कभी-कभी दूरदर्शन पर धारावाहिकों में ऐसे चित्र प्रसारित होते हैं, जिन्हें एक साथ पूरे परिवार के लोग देखने में संकोच का अनुभव करते हैं। क्या यह स्थिति सामाजिक मर्यादा एवं सांस्कृतिक निष्ठा के लिए एक चुनौती नहीं है?

आजकल ज्यादातर धारावाहिकों में परिवार की टूटन और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में तनाव समान रूप से व्यक्त हो रहा है। भारतीय संस्कृति में जहाँ विवाह एक पवित्र, सामाजिक बन्धन होता था, धारावाहिकों के प्रभाव के कारण आज विवाह-विच्छेद, प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह के प्रकरणों में बढ़ोत्तरी हो रही है। पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होकर हमारी पारिवारिक संरचना को नष्ट करने का प्रयास हो रहा है। इन धारावाहिकों के माध्यम से जो मूल्य एवं संस्कार परोसे जा रहे हैं उससे परिवारिक विघटन एवं अशान्ति बढ़ रही है। मूल्यों के इस बदलते परिवेश में धन को वरीयता दी जा रही है, जिससे स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में दरार उत्पन्न हो रही है। एक पति के पत्नी के अलावा गैर औरतों से या एक पत्नी के पति के अलावा गैर मर्दों के साथ सम्बन्ध जैसे हमारी आधुनिकता का एक अटूट अंग बन चुका है। इसके कारण परिवारों में नैतिक संकट बढ़ गया है। आधुनिक जीवन की चुनौतियों ने मनुष्य समाज को एक नयी दिशा प्रदान की है, जिससे मातृत्व तथा माँ होने का गौरव विस्मृत होता जा रहा है। आज नये-नये मूल्यों को जो जीवन में उभारा गया है उसके पीछे क्या कोई षडयंत्र नहीं है। हमारी संस्कृति का अवमूल्यन करके जो अपसंस्कृति धारावाहिकों के माध्यम से हमारे सामने परोसी जा रही है, क्या इसको रोकने के लिए समाज को कदम उठाना नहीं पड़ेगा? हमारे पारिवारिक सम्बन्धों में वर्षों से जो गरिमा, शालीनता, मर्यादा की भावना रही है, उनीपर इन धारावाहिकों ने जो कुठाराघात किया है उसको कौन रोकेगा? व्यक्तिवादी, स्वार्थी, स्वच्छन्द विचारधाराओं के कारण त्याग, सेवा की भावना का ह्रास हो रहा है, उनको फिर से जीवन्त करना होगा। नयी सामाजिक मान्यताओं का निर्माण हो रहा है और पुरानी मान्यताएँ, परम्पराएँ समाप्त हो रही हैं। नये

मूल्यों का निर्माण हो रहा है। जो समाज के लिए विघातक हैं उनको रोकने के लिए सामाजिक संस्थाओं और खास कर व्यक्तिगत धरातल पर भी मनुष्य को आगे बढ़ना पड़ेगा। किसी विद्वान ने कहा है, "यहाँ मेरा उद्देश्य सांस्कृतिक संकट के विरोध में उठने वाले अनेक स्वरों में अपना स्वर मिलाना है। क्योंकि हमारी मनुष्यता, संवेदनाएँ, सुख-दुख सभी कुछ इसी संस्कृति में संचित हैं। इसी में हमारी आस्थाएँ बसती हैं, वैचारिक संस्कार पलते हैं। इसे अपमानित करने का अधिकार किसी भी व्यवस्था या प्रणाली को नहीं है और न ही दिया जा सकता है। टी.वी. द्वारा पश्चिम से आयातित यह अपसंस्कृति हमारी संस्कृति की जड़ों में मट्ठा डालकर उसे पूर्णता निष्क्रिय वस्तु में तब्दील कर देने की साजिश में कामयाब हो, उससे पहले इस असन्तोष को संवादों की प्रक्रिया से गुजरकर रचनात्मक विद्रोह की शक्ल अख्तियार करनी होगी।" नहीं तो उनका उद्देश्य यह है "कई सीरियलों में परिवार के षड्यंत्रों को प्रमुखता दी जा रही है क्योंकि उनके निर्माताओं का काम केवल पैसा कमाना है और इसलिए वे मनोरंजन के गलत हथकंडों से आगे बढ़ रहे हैं।"[2]

इसका मतलब यह नहीं है कि धारावाहिकों ने सिर्फ बुरा प्रभाव ही डाला है। 'चाणक्य', 'भारत एक खोज', 'रामायण', 'महाभारत', 'मालगुडी डेज' आदि धारावाहिक भारतीय संस्कृति एवं आचार-विचार से जुड़े होने का अहसास दिलाते हैं। ये सीरियल मनुष्य की अपनी सभ्यता, उसकी जमीन से मुँह मोड़कर नहीं चल रह थे। इन धारावाहिकों ने एक तरफ बौद्धिक, वैचारिक सभ्य दर्शकों के दिलों में आस्था जगाने का कार्य किया है तो दूसरी तरफ 'रामायण', 'महाभारत' आदि धारावाहिकों ने मध्यवर्ग को प्रभावित भी किया है। उन्होंने बिना किसी रूढ़िबद्ध मान्यताओं पर प्रहार किये इनकी रचना की है। इसमें उनका उद्देश्य साफ नजर आता है कि वे इन धारावाहिकों में भारतीय एकता, राष्ट्रीय भावना, पारिवारिक सम्बन्धों की तस्वीर उतारना चाहते थे। 'रामायण', 'महाभारत' ने तो बड़ी सफलता हासिल की थी, उनके प्रसारण के समय शहर, गाँव, कस्बों में एकदम शान्ति छा जाती थी। मछली बाजार में तो मछली बेचना छोड़कर वे औरतें 'रामायण', 'महाभारत' देखने के लिए जाया करती थीं। इनके पात्रों का जीवन्त चित्रण इतना प्रभावशाली तथा सशक्त था कि लोग इन्हें वास्तविक मान बैठे थे। इन पात्रों को ग्रामीण अंचलों में तो बहुत सम्मान मिला। इन धारावाहिकों ने स्वस्थ मनोरंजन देने के साथ-साथ लोगों में सौहार्दपूर्ण वातावरण तथा मनुष्य को एक साथ जोड़े रखने में भी सहायता की।

'चाणक्य' धारावाहिक में चाणक्य को एक शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया। वह 'चन्द्रगुप्त' को सम्राट पद तक पहुँचाने के लिए कठोर मेहनत करता है, लेकिन जिस दृष्टि से वह अपनी विचारधाराओं और मान्यताओं को स्थापित करना चाहता है वह अयोग्य लगता है। जवरीमल्ल पारख के अनुसार, "इस धारावाहिक में राष्ट्रवाद का वह उग्र रूप है जो ब्राह्मणवादी, उत्तर भारतीय हिन्दू संस्कृति का वाहक है जिसमें दूसरे धर्मों, जातीयता और संस्कृतियों के लिए कोई जगह नहीं है। चाणक्य की यह कमी दृष्टिगोचर होती है कि वे अपनी मान्यताएँ हमेशा दूसरों पर थोपना चाहते हैं तथा दूसरों की बातों को अनसुना

करते हैं। इसके माध्यम से यह भी बताया गया है कि शिक्षक होने पर आपको अपनी विचारधाराएँ दूसरों पर थोपना नहीं चाहिए, बल्कि दूसरों की भावनाओं का, उनके विचारों का आदर भी करना चाहिए।" 'सुरभि' जैसा धारावाहिक विभिन्न जगहों की सैर करने के साथ वहाँ की संस्कृति, खानपान, रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा आदि को भी प्रस्तुत कराता था, जिससे एक जगह बैठे-बैठे हम देश-विदेश की यात्रा कर आते थे।

बच्चों को परी कथाएँ, पशु-पक्षियों की रोचक कहानियाँ पसन्द आती हैं। जहाँ एक तरफ उनके लिए टेलीविजन पर टॉम एड जेरी, जंगलबुक, टारझन, छोटा भीम जैसी एनिमेशन सीरियल लोकप्रिय हैं वहाँ दूसरी तरफ हिंसा और अपराध से भरे कॉमिक्स और कार्टून धारावाहिकों को भी वे पसन्द करते हैं। कार्टून चैनेल की 'बेण्टेन', 'ड्रेगन बाल-झी', 'लुनीटून्स' पोगो चॅनेल पर 'मॅड', 'होल इन न वॉल', 'तकेसिज कासल', 'नॉडी, हंगामा चॅनेल पर 'डोरेमान', 'कोची कामे' आदि धारावाहिक दिन रात चलते रहते हैं, जिनसे ये बच्चे बहुत ही प्रभावित हो जाते हैं। ज्यादातर इन धारावाहिकों में आदिम जीवन, पशुओं की कहानियाँ और अंतरिक्ष जीवन चित्रित होता है। 'मॅड', 'होल इन द वॉल', 'तकेसिज कासल' जैसे थोड़े धारावाहिक खेल के प्रति रुचि तथा रचनात्मकता को बढ़ावा देते हैं। लेकिन टेलीविजन पर जो यह अवास्तविक संसार दिखाई देता है, उनसे क्या बच्चों में कोई रचनात्मक ऊर्जा पैदा हो सकती है? क्या उन बच्चों में अपने संस्कारों के प्रति कोई रुचि पैदा हो सकती है?

दूरदर्शन के थोड़े से धारावाहिकों ने राष्ट्रीय एकता, जनजागरण, जागरुकता, जनसंख्या नियंत्रण, पर्यावरण संतुलन, कृषि उत्पादन में प्रोत्साहन आदि में सहायता की। नेशनल जिओग्राफिक तथा डिस्कवरी आदि केबल चैनलों ने बच्चों तथा बड़ों का हमेशा ज्ञानवर्धन ही किया। लेकिन बच्चों पर बुरा असर करने वाले बहुत से चैनल हैं जिनसे उनकी पढ़ाई पर बुरा असर पड़ता है और साथ ही कम उम्र होने के कारण उनके मन मस्तिष्क पर भी जल्द ही कुप्रभाव डालता है। बहुत से ऐसे धारावाहिक हैं जो बच्चों में हिंसा और फैंटेसी के प्रति सम्मान बढ़ाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का तो यह मानना है कि धारावाहिक बच्चों में जीवन मूल्य सम्बन्धी द्वन्द्व को भी पैदा कर सकते हैं। बच्चों में सही निर्णय लेने की क्षमता भी नहीं होती है। टीवी सीरियल के रुपहले पर्दे पर जो दिखायी देता है, उसे वास्तविक मानकर उनकी चाह में कदम बढ़ाते हैं। ऐसी स्थिति में ज्यादातर बच्चे परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं से जूझने के बजाय इनसे मुँह मोड़ लेना अधिक पसन्द करते हैं। वे अपनी एक अलग ही दुनिया में विचरण करना सही समझते हैं और सत्य से जब उनका वास्ता पड़ता है तब कल्पना लोक या फैंटेसी के उस जगत से बाहर आना उनके लिए मुश्किल हो जाता है।

इन सभी धारावाहिकों को दर्शकों तक पहुँचाने का कार्य भाषा करती है। आजकल ऐसा देखा जाता है कि धारावाहिकों और बदलती हुई हिन्दी का एक अटूट रिश्ता है। बदलते हुए राजनीतिक, सामाजिक जीवन के पहुलओं को अभिव्यक्त

करने के लिए दूरदर्शन पर हिन्दी भाषा के कई प्रयोग हम देख सकते हैं। इतना ही नहीं धारावाहिकों में अपनायी गयी हिन्दी विभिन्न सान्दर्भिक तेवरों को भी रेखांकित करती है। धारावाहिकों में भाषा की अपनी अदाओं तथा हिंग्लिश के मेल-मिलाप से भी हिन्दी का संप्रेषण किया जाता है।

इस लेख के अन्त में टेलीविजन और केबल टेलीविजन नेटवर्क के अधिनियम की ओर आपका ध्यान खींचना चाहूँगी। सरकार ने टेलीविजन और केबल टेलीविजन के नेटवर्क के विस्तार के बाद नेटवर्क (नियमन) अधिनियम 1995 बनाया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने ऐसे कार्यक्रम प्रसारित करने को आचार संहिता का उल्लंघन माना जो सुरुचिपूर्ण और सभ्य आचरण के विरुद्ध हो। जिसमें मित्र देशों की आलोचना की गयी हो, किसी धर्म और सम्प्रदाय की आलोचना या निन्दा की गयी हो या उनके प्रति तिरस्कार की भावना व्यक्त की गयी हो, जिसमें साम्प्रदायिकता फैलाने की कोशिश हो। ऐसे कार्यक्रमों की भी मनाही की गयी जो हिंसा भड़काते हों, जिससे कानून व्यवस्था के भंग होने का खतरा हो या जो राष्ट्रविरोधी विचारधारा को प्रोत्साहित करते हों। जिसमें राष्ट्रपति और न्यायपालिका की निष्ठा पर सन्देह व्यक्त किया गया हो। ऐसे कार्यक्रम भी जो अन्धविश्वास फैलाते हों, जो महिलाओं की छवि को धूमिल करते हों, उनकी देह या किसी अंग को अश्लील ढंग से व्यक्त करते हों।

सरकार ने जो यह अधिनियम बनाया है उस पर गम्भीरता से कोई ध्यान दे रहा है? महिलाओं की छवि को धूमिल न करनेवाला शायद ही कोई ऐसा धारावाहिक बनाया गया होगा। ज्यादातर धारावाहिकों में औरत को ऐसी वस्तु के रूप में पेश किया जाता है, जैसे वह मनुष्य न हो। यौन एवं हिंसा पर भी बहुत से धारावाहिक बनाये जाते हैं, जिनसे बच्चों के कोमल मन एवं अपरिपक्व मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। 'सीआईडी', 'आहट' जैसी सीरियलों से भी बच्चों का मन प्रभावित हो जाता है।

'राखी का स्वयंवर', 'दुल्हनिया ले जाएँगे' जैसी धारावाहिकों के अनेक रूपों से राखी के शरीर प्रदर्शन एवं उसके सो कॉल्ड प्रेमियों के साथ वार्तालाप से समाज को क्या दिशा मिल रही है? राहुल महाजन के 'काका (चाचा) मर जाएँ लेकिन हम हनीमून मनाएँगे ही' इस दृष्टिकोण से समाज के प्रति कौन-सी नैतिकता का निर्वाह हो रहा है? ऐसे अनेक धारावाहिकों के माध्यम से महिलाओं को तो सौ-सौ प्रतिशत आरक्षित किया जा रहा है। क्या इन प्रश्नों के उत्तर किसी धारावाहिक निर्माता के पास है? आज यह वक्त आ गया है कि दर्शकों को ही नैतिक एवं मानमूल्यों की रक्षा करनेवाले धारावाहिकों को देखने के लिए अपना इडियट बॉक्स खोलना होगा।

सन्दर्भ

1. सुधीश पचौरी : नये जनसंचार माध्यम और हिन्दी
2. राजेन्द्र मिश्र : टेलीविजन लेखन; पृ. 97